Vol-1, Issue-2 53

ऋतु सम्बन्धी लोक-गीतों में स्त्री

डॉ. मुन्नी चौधरी

सहायक प्रोफसर, हिंदी विभाग दयालसिंह इवनिंग कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सारांश:

लोक, गीत और स्त्री – तीनों संपूरक हैं। इनमें से किसी एक का भी अभाव नहीं हो सकता। ये तीनों मिलकर जो मिथक गढ़ते हैं, वही लोक है। लोक बिना गीतों का नहीं हो सकता और गीत बिना स्त्री का नहीं हो सकता। लोक को नियम-कानून नहीं चाहिए होता है। वह किताबों और पोथियों पर आश्रित नहीं है। वह अपनी स्वतंत्रता और आधुनिकता में वास्तविक लोकतंत्र है। उसे तथाकथित सभ्य समाजों की जरूरत नहीं है। गीतों की आत्मा व कलेवर स्त्रीत्व से सम्पृक्त है। लोक और गीतों का अस्तित्व स्त्री से है। स्त्री से लोक है, जो स्वाधीन है। इसीलिए स्वाधीनता और परिपूर्णता उसका प्राण है। जीवन वहीं है, जिसमें उल्लास, राग, तृप्ति, आवेग और सुकून का सागर है।

बीज शब्द :

लोक, गीत, स्त्री, राग, दुख, मुक्ति और जीवन

'लीक' आम या जन-साधारण व्यक्तियों या जन-समूह का द्योतक है। विश्व ग्लोबल गांव नहीं बन पाया था तब यह देश, विश्व या संसार या जगत का पर्याय था। जब से मनुष्य ने इसकी एक-एक सीमाओं को लांघ गया है या पता लगा लिया है तब से यह ग्लोबल बन गया है। लोक जनपद का भी पर्याय है। मेरा मतलब यहां इसी जनपद विशेष से है। हर जनपद एक विश्व या जगत की सारी विशेषताओं को समेटे हुए होता है। यहां वे सारी विशेषताएं मिल जाती हैं, जिसकी परिकल्पना में एक सम्पूर्ण विश्व होता है, जो अपने-आप में परिपूर्ण होता है। वहां लोगों का जीवन गतिशील बना रहता है और जिसे किसी दूसरी दुनिया की कोई जरूरत नहीं रह जाती। वहां के निवासियों की उत्तरजीविता सतत बनी रहती है। वह योग्यतम की उत्तरजीविता (Survival of the Fittest) के सिद्धांत को बनाये रखता है या उस पर खरा उतरता है। यह लोक मूल या आदि वासी-निवासी या नेटिव्स का द्योतक है। भारत की पचासी प्रतिशत जनता मूल निवासी है, जो अपने वंशों को उत्तरोत्तर बढ़ाने में हजारों सालों से अपनी परिपूर्णता या दक्षता का परिचय दिया है और देता आ रहा है। यहां के दलित, आदिवासी व पिछडे जन-समूह उत्तरजीविता के सशक्त उदाहरण हैं, जो अपने-आप में स्वतंत्र हैं और जिसे किसी खास समुदाय की कभी आवश्यकता नहीं रही और न अब है। इन वर्गों के लोगों ने प्राचीन इंडिया में अपनी अत्याधनिकता का परिचय दे दिया है। सिंधघाटी व बौद्धकालीन सभ्यताएं इस बात की पृष्टि कर देती हैं तथा जो दुनिया के गिनी-चुनी सभ्यताओं की समकालीन रही हैं। उत्तरजीविता ही वह नींव है, जिस पर इनका महल खड़ा है। यही कारण है कि दुनिया के तमाम आततायियों ने इनकी हस्ती मिटाने की पुरजोर कोशिशें कीं लेकिन मिटा न सकीं। लाखों बर्बरों के झंझावात भी इन्हें न मिटा सकेंगे। इस लोक की कुछ विशेष वजहें हैं, जिनके कारण इनकी हस्ती नहीं मिटती और न मिटायी जा सकती है।

लोक इतना विशाल होता है कि इसका सम्पूर्ण साहित्य में समा नहीं पाता। इसीलिए इनका प्रतिनिधित्व जितना इनका लिखित साहित्य नहीं करता उससे ज्यादा इनका मौखिक साहित्य करता है। सांकेतिक भाषा-भाव- ज्ञान जितना कमतर का बोध कराता है, मौखिक उतनी ही विपरीतता में विशालता को प्रदर्शित करता है। यही कारण है कि यहां मौखिक साहित्य-ज्ञान इनकी सभ्यता-कल्चर का प्रतिनिधि है और यह भी उत्तरजीवी है ठीक उनके वंशों की तरह। लोक साहित्य मौखिक रूप में हजारों सालों तक जिंदा रहता है और इस रूप में उनका धरोहर सतत प्रवहमान बना होता है। लोक साहित्य में पारम्परिक व आनुभाविक ज्ञान, कल्चर और जीवन-शैली सुरिक्षित कुछ घिसती-जुड़ती चलती चली जाती है। इसमें उनके मिथक, नयी-पुरानी परम्परायें, रीति-रिवाज, आस्था-विश्वास, गीत-संगीत, नाटक, कथा, दर्शन, विचार आदि सब कुछ जिंदा सततता में गितशील रहते हैं, जो आज गद्य और पद्य दोनों रूपों में उपलब्ध हैं।

ज में रहा

पूर्वोत्तर प्रभा वर्ष-1, अंक-2 जुलाई-दिसंबर 2021

है, जो आज के लोक-साहित्य का मूल स्रोत है¹। लोकमानस सहज प्रकृत होने के कारण सरल और बोधगम्य होता है, जो उसके वास्तविक अनुभव से उपजा होता है।

साहित्य के विविध रूपों में मूल निवासियों की भावनाएं या कल्चर अभिव्यक्त होती हैं। ये सामाजिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों, आस्था-विश्वासों, मानव-मुल्यों और व्यवहारों की संवाहक होती हैं। इसका सम्बन्ध मानव जीवन के संघर्षों और उपलब्धियों से होता है। इसमें उनका सुख-दुख या कहें सब कुछ व्यक्त होता है, जिसमें जीवन के पूर्व से लेकर मौत के बाद तक की क्रिया-कलापों-विश्वासों का भी अंकन होता है। लोक-साहित्य में लोक का सम्पूर्ण अभिव्यक्त होता है और सुरक्षित भी रहता है। वह अपनी सहजता, सरलता, स्वच्छंदता और स्वाभाविकता के लिए जाना जाता है। उसमें जटिलता का गण नहीं पाया जाता। उसकी भाषा सरल-सहज-सुबोध होती है ठीक उसी तरह जैसे लोक का जीवन होता है। देश की सारी क्षेत्रीय भाषाएं इस बात की पुष्टि करती हैं। हिंदी लोक की भाषा है, लोक से निकली है और लोक द्वारा सुजित है। इसकी प्रकृति इसीलिए सरल, सुगम और सुबोध है। लेकिन हिंदी अब अपनी प्रकृति से दूर बनावटी के रंग में रंगती दुरूह होती चली जा रही है। खैर, लोक साहित्य अपनी सहजावस्था में उपस्थित रहता है। इसमें लोक जीवन की आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मृत्यु, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि भावानुभावों की अभिव्यंजना साफ दिखती है। अब्राहम लिंकन के तर्ज पर कहें तो यह जनता का साहित्य है, जो जनता द्वारा जनता के लिए है। यहां 'जनता' व 'लोक' से तात्पर्य उन लोगों से है, जिसे तथाकथित सभ्य व शहरी लोग 'गंवार', 'गंवई' या 'तुच्छ' या 'नगण्य' समझते हैं।

गीत लोक साहित्य का सर्वाधिक सशक्त रूप है, जिसमें जन-जीवन के गूढ़तम गांठों और पेंचों को बड़ी सहजता से व्यक्त कर दिया जाता है, जिसे नअक्ल व्यक्ति भी समझ लेता है। यह विशेषकर स्त्री के कोमल-करूण सुख-दुखात्मक भावानुभावों की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त रूप है। गीतों में अधिकतर वही होती है। मेरी दृष्टि में, वह नहीं होगी तो गीत नहीं होगा। गीत है तो स्त्री है। गीत गोपन का सर्वाधिक सभ्य व शालीन अभिव्यक्त माध्यम है। उल्लेखनीय है कि गोपन स्त्री का ही होता है, पुरुष का नहीं (भारतीय संदर्भ में)। इसलिए गोपन है तो वह स्त्री का ही है। उल्लेखनीय बात यह भी है कि गूढ़तम रहस्यों को सरलतापूर्वक समझाने का लयबद्ध तरीका सर्वाधिक पुराना और लोक का प्राण है। गीत लोक का सर्वाधिक सफल-सशक्त आविष्कार है। गेयता स्त्रैण गुण है वहीं वाद्यता पुरुषवाही है। गीत से मन-मानस व देह की गूढ़तम तंतुओं को झंकृत किया जाता है। यह गेय है इसीलिए क्योंकि गेयता मन-मानस की तंत्रिकाओँ को जगाता है, सहलाता है तथा उसे सक्रिय बनाता है। कुल मिलाकर, गीत का लक्ष्य और सिद्धि शांति व सुकून है। यही गीत है।

गीत दुखी लोगों का अमर रस है। जहां दुख है वहां गीत है। भारत दुखी लोगों का देश है। इसीलिए बुद्ध दुख से द्रविभूत थे। दुख ने ही उन्हें आकर्षित किया था। इसी दुख ने उन्हें मानवता का महान अध्येता बनाया था। वे दुनिया के पहले ऐसे अध्येता थे, जिन्होंने दुनिया को दुख से मुक्ति दिलाने का संकल्प लिया था। उन्होंने इसमें सफलता भी हासिल की थी और लगभग पंद्रह सौ वर्षों तक भारत को दुखों से मुक्ति दिलाने में उनके सूत्र कारगर साबित हुए। यही दुखवाद बौद्ध धर्म का मूल है। भारत की जनता अंतहीन दुखों से घिरी हुई है, जिसे कुछ हद तक अंग्रेजों ने मुक्ति दिलाने में सफलता हासिल की। यही कुछ महान काम डा. बाबा साहब भीमराव आंबेडकर ने किया। उन्होंने कुल जनसंख्या के संतानबे प्रतिशत जनता को तीन प्रतिशत लोगों के साथ शान से खड़ा करने का गुरूत्तर कार्य किया है।

यहां दुख है तो दुख से मुक्ति के हजारों प्रकार के साधन जैसे गीत-संगीत और वाद्य-यंत्र हैं। इनसे मनोरंजन करके भारतीय दुखों से मुक्त होते हैं। सत्ता, धर्म व समाज-संचालकों की अंतहीन व मर्मांतक शोषण-दुख-अपमान-बर्बरता से भारतीय जनता आपाद पीड़ित है। यहां शोषण के इतने स्तर हैं कि कोई भी इससे अछता नहीं है। वैसे, मातम मनाने का सारा जिम्मा भारतीय स्त्रियों के ऊपर छोड़ दिया गया है। इसीलिए मौत के मातम में सर्वाधिक दुखी स्त्रियां ही होती हैं, इसलिए भी कि वे जन्म देने की पीड़ा की भुक्तभोगी होती हैं। मौत किसी की भी हो - उन्हें जिस हलिये और स्थितियों में रहना पड़ता है वह सर्वाधिक पीड़ादायी होती है। इसीलिए इस दुखदायी स्थिति को स्त्रियों के माथे सौंप दिया गया है। वे मातम मनाती हैं और दुख की गहरी व घनी पीड़ा का अनुभव करती हैं तथा जीवित रहते हुए भी वे इसी में जीती हैं। गौरतलब बात है कि जन्म और मौत – दोनों ही परिस्थितियों में दुखी केवल स्त्री ही होती है। पुरुष दोनों ही स्थितियों में खुद को दुख से पल्ला झाड़ लेता है। यहां दुख भी एकांगी है।

लोक गीत मूल रूप से वाचिक रूप में ही मिलते हैं। मिलते वात-बात में गीत बना लेती हैं। एक तरह से गीत के बोल उनकी जबान पर होते हैं। दूसरी बात कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्वीकार की जाने की वजह से गीत स्त्रियों की जुबान पर होते हैं। दूसरी, प्रिंटिंग की सुविधा न होने और सजग अध्येताओं की कमी होने की वजह से इसके संग्रह की प्रवृत्ति का अभाव है। तीसरी, समाज और देश से शिक्षा-संस्थाओं के उन्मूलन, अशिक्षित बनाये रखने की मानसिकता, बौद्ध विश्वविद्यालयों और उनकी किताबों को नष्ट करने की प्रवृत्ति, बौद्ध-ज्ञान के श्रोतों को संग्रहित न रखने की प्रवृत्ति और यथार्थ-तार्किक-विज्ञान-ज्ञान विरोधियों द्वारा इसे नष्ट करने की मानसिकता, मूल निवासी अध्येताओं की हत्या, ज्ञान-विरोधियों द्वारा शिक्षितों- बौद्धों- अध्येताओं- वैज्ञानिकों- आलोचकों व प्रगतिशील सोच के लोगों की हत्या व ऐसा करने हेतु पुरष्कार

पूर्वोत्तर प्रभा वर्ष-1, अंक-2 जुलाई-दिसंबर 2021

Vol-1, Issue-2

की घोषणा आदि वजहों से कलाओं को जीवित न रखा गया. समाज के ठेकेदारों द्वारा भाग्य-भगवान को बढावा देना तथा शिक्षा पर प्रतिबंध लगा दिये जाने की वजह से ज्ञान को संग्रहित न रखने की प्रवृत्ति बढ़ी और प्रतिभा घर-परिवार-जबान में ही सिमट कर रह गई। यहां तक कि सत्ता व जिम्मेदार लोगों द्वारा आमजन पर विभिन्न प्रकार से प्रतिबंध लगाये जाने की वजह से जनता की प्रतिभाएं मरती गईं। कुल मिलाकर, देश व समाज का अंधकार के गह्वर में समा जाना भी बड़ा कारण रहा है। बाहरी आतंकियों व बर्बरों द्वारा मुल निवासी भारतीयों का अंतहीन शोषण-अत्याचार-अपमान-लूट-आगजनी-हिंसा-बलात्कार तथा मनुजों को जानवर में तब्दील करने की प्रवृत्ति के कारण कला-ज्ञान समाप्त होता रहा और यह केवल हाथ व जबान से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरण में ही बना रहा। श्रमजीवियों में ज्ञान, कला-विज्ञान अनायास ही मिल जाता है। बावजूद इन सबके आज मूल निवासी अपनी ही मिट्टी के खर-पतवार व तलछट बन गये हैं। उल्लेखनीय है कि लोक मूल निवासियों का है। लोकगीत लोक के गीत हैं, जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक को समर्पित कर देता है। शास्त्रीय नियमों की परवाह न करके सामान्य लोक-व्यवहार को उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द की तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है, वही लोकगीत है²। लोक गीत तीन रूपों में मिलते हैं - लोक में प्रचलित गीत, लोक-रचित गीत और लोक विषयक गीत। लोकगीत सीधे जनता के संगीत हैं । इनके गीतों के विषय रोजमर्रा के बहते जीवन के होते हैं, जो सीधे मर्म को छू लेते हैं।

लोक की स्त्रियां सबल हैं। उनसे संघर्ष करके पुरुष हार गया है। उन पर पुरुषों का जोर नहीं चलता। इसीलिए वे नियम, शास्त्र व रीति-नीतियों को नहीं मानतीं। यही कारण है कि वे स्वतंत्र हैं। उनकी स्वतंत्रता का ही द्योतक है कि उनके अपने रीति-नीति हैं, जो शास्त्रों अलग 'आपस्तम्बधर्मसूत्र' भी यही कहता है, 'यत स्त्रिय आहस्तत्कृर्यु:' मतलब जो स्त्रियां कहें, सो करें⁴। दरअसल, यह लौकिक रीति-नीतियों के सम्बन्ध में ही कहा गया है। लौकिक रीति-नीतियों का दारोमदार स्त्रियों पर होता है। लौकिक रीति-नीतियां जटिल, प्रभावशाली व व्यापक हैं....इनके आधार धर्मग्रंथ नहीं हैं, न इन्हें पुरोहित ही सम्पन्न करते हैं। इनकी मुख्य कर्तु रमणियां हैं। गीतों की रचयिता मूल रूप से स्त्रियां ही होती हैं। लेकिन उन्हें समाज में महत्व न दिये जाने के कारण भी उनके गीत लिखित रूप में नहीं मिलते। उन्हें शिक्षित भी नहीं किया गया। वैसे, वे व्यक्तिवाद में विश्वास नहीं करतीं। वे तो समष्टि में खुद को मिटा देती हैं। वे खुद को सबमें घुलाकर जीवित रहती हैं। इस कारण भी उनके गीत किसी

एक के नाम नहीं मिलते। वहां सिर्फ गीत होता है, गीतकार नहीं होता। अब जबसे मुद्रण कला की शुरुआत हुई है – गीत मुद्रित रूप में मिलने लगे हैं, लेकिन बहुत ही कम मात्रा में। बहुत-से लोक समाजों के लोक गीतों का संग्रह अभी भी नहीं किया गया है। लोक को महत्व न दिये जाने के कारण लोक में पाये जाने वाले ज्ञान-विज्ञान-कला व सभ्य जीवन-शैली का दस्तावेजीकरण आज भी नहीं हो रहा है। बावजूद इन सबके, कुछ जनपदीय या क्षेत्रीय या मूल इंडियन भाषाओं में लोक गीत अवश्य मिल जाते हैं।

भारत में छ: ऋत्एं पाई जाती हैं। सभी ऋतुओं में अलग-अलग भाव और सौंदर्य देखने को मिलते हैं। इन ऋतुओं में प्रकृति के अनेक रूप मिलते हैं। ऋतु सम्बन्धी गीतों में मनुष्य और प्रकृति के विविध-रंगी झलक देखने को मिलते हैं। ये ऋतुएं मानव जीवन को गहरे प्रभावित करती हैं। साल के बारह महीने छ: ऋतुओं में बंटे हैं और सभी ऋतुओं की अलग पहचान है। सभी ऋतुओं में गायन की परम्परा है। बारहमासा, फाग, चइती, बइसाखी, कजरी आदि गीत विभिन्न ऋतुओं में गाये जाते हैं। इनमें पुरुष और महिला दोनों के गीत मिलते हैं। बारहमासा, फाग, चइती और बइसाखी पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले गीत हैं, वहीं कजरी महिलाओं द्वारा गाया जाने वाला गीत है। कुछ गीत भले ही पुरुषों द्वारा गाये जाते हैं, पर भाव के केंद्र में स्त्री ही होती है। वही पुरुषों के जीवन की धुरी है। इसीलिए सभी गीतों में स्त्री होती है। मैं यहां कुछ ऋतु गीतों की चर्चा करुंगा और उनमें स्त्रियों की उपस्थिति का वर्णन करूंगा। मेरे इस अध्ययन के केंद्र में मगध और मगही है।

फाग – फाग हिंदी प्रदेशों का बडा ही लोकप्रिय लोक-राग है। इस राग के गीतों की शुरुआत बसंत पंचमी के दिन से ही हो जाती है और होली-त्योहार के बाद बुढ़वा मंगर तक गायन-वादन-नाचन चलता रहता है। इन गीतों को कई लोग फगुआ भी कहते हैं। इसे फागुन महीने के उत्सव के तौर पर भी जानते हैं। इसे फागुन में गाया जाना वाला गीत से भी जानते हैं। फगुआ उत्सव में लोग एक-दूसरे पर कीचड़-रंग-गुलाल डालते हैं, पूए-पकवान व वेज-नानवेज की तली-भुनी चीजों के साथ नशीले पदार्थों का सेवन भी करते हैं। इस मौके पर नशा करना एक आम चलन है, जिसमें न केवल पुरुष बल्कि स्त्रियां भी भाग लेती हैं। इस त्योहार को स्त्री-मर्दन के नाम से भी जानते हैं। इस गम व खुशी के मौके पर स्त्रियों पर पुरुष आधिपत्य जमाने की प्रवृत्ति दिखती है। खुशी मनाने का चरमोत्कर्ष स्त्री-मर्दन पर जाकर सम्पन्न होता है। जिनके पास इसकी उपलब्धता नहीं होती वे नशे में गम गलत करते हैं। इस त्योहार को मनाने के लिए नौकरी-पेशा या दूसरे देश-राज्य में रहने वाला परिवार अपने मूल निवास को पहुंचता है और अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ मिलकर इसे सम्पन्न करता है। इस त्योहार की समाप्ति से ही नये साल की शुरुआत मानी जाती है। इस होली के भी अनेक रूप हैं, जैसे

Vol-1, Issue-2

रंडुओं की होली, ब्रज की लठ्ठमार होली, बनारस की अट्टहास होली, बुढवा मंगर होली आदि। यह त्योहार फागुन महीने की पूनम को मनाया जाता है। यह दो दिन मनाया जानेवाला त्योहार है। पहले दिन होलिका (स्त्री) को पुरुषों का दल-बल मिल-जुलकर जलाता है। इसे होलिका दहन कहा जाता है। यही दल दूसरे दिन की सुबह जली हुई राख को एक-दूसरे के माथे पर मलता है तथा शाम को नहा-धो नये कपड़े पहनकर रंग-गुलाल लगाता-उड़ाता है। दूसरे दिन को ढुढ़ेरी या धुरखेल के नाम से जानते हैं। इसके अगले मंगलवार को बुढ़वा मंगर की होली कहते हैं। इस दिन तक होली का त्योहार मनाया जाता है। घर में स्त्रियां भी पहले तो पुरुषों के साथ रंग-गुलाल लगाती-उड़ाती-खेलती हैं और पूए-पकवान, मास-मछली बनाती हैं, पुरुषों के संग वे भी खाती-पीती हैं। इस मौके पर स्त्री-पुरुष दोनों नशे का इस्तेमाल करते हैं। इसी माहौल में ढोलक-झाल-मजीरे की टोली गाती-बजाती हुई गलियों में निकलती है। इस वक्त शोहदों की टोली देखने लायक होती है। यह लोक-राग लगभग एक से सवा महीने तक चलता है। होली के मौके पर मनुज तो मदमस्त होता ही है, प्रकृति की जवानी भी पूरे सबाब पर होती है। इस मौसम में न तो गरमी अधिक होती है और न ही सरदी। मौसम का तापमान बीस-पच्चीस डिग्री का होता है। धरती पर रब्बी फसलों की बहार-ही-बहार दिखती है। लगभग सभी फसलें फूल-फलों से गदरा चुकी होती हैं। खेसारी, गेहूं, मसूर, मटर, चना आदि की फसलें अपने सबाब पर होती हैं। ये गदराकर खाने के लायक हो जाती हैं। सरसों के पीले फूलों से धरती पीली-पीली चुनर में लिपटी दिखती है। तीसी के नीले फूल गजब की चटख नजारे पेश करते हैं। विभिन्न प्रकार की सब्जियों से धरती पटी पडी होती है। इस वक्त आलू की फसल कट रही होती है। इसलिए आलू इफरात में उपलब्ध हो जाता है। यही कारण है कि इस वक्त आलू का अउंधा खुब खाया जाता है। गोइठे की आग में रखे मिट्टी के बर्तन में पके आलू को जब नमक-मिर्च के साथ समूह में खाया जाता है तो देह में गरमी दौड जाती है। उसकी सोंधी गंध से कोई भी खाने को ललचा जाता है। गंवई फलों की बहार भी धमक चुकी होती है। बेर खाने लायक हो जाता है। आम की मंजरी तो मानो इत्र छिड़क रहा होता है और वातावरण मादक हो उठता है। इस माहौल में कौन ऐसा दिल होगा, जो न तड़पेगा और न झूमेगा!

होली एक बड़ा लोक त्योहार है। यह काम का त्योहार है, जहां उन्मत्त जवानी मद-मस्त मौसम में प्रिय के साथ रंग-रिलयां मनाने की इजाजत लेती-देती है। इस मौके पर स्त्री-पुरुष मौसम के साथ-साथ ताल मिलाकर जीवन की रंगीनियों में डूबते हैं। आशीकाना मौसम, नये फसलों से पटी-पड़ी धरती, फूल-फलों से लदी डालियां व भूरे रंग में रंगी धरती जो वातावरण पेश करती है, वह अलमस्त जवानी की अंगड़ाइयां लेती-सी दिखती है। किसान-मजदूर परिवार मस्ती की उद्दाम लहरियों में खो जाता है। इस मौके पर लोग रसपूर्ण

गीत गाते हैं। वैसे, इसमें पुरुष ही गाता-बजाता है। स्त्री चिरंतन सुख की मौन-मधी पुकार समझी जाती है। इसीलिए कई जगहों पर इसे स्त्री-मर्दन का त्योहार भी कहा जाता है।

यह मगही होली गीत स्त्री-केंद्रित है, जिसमें नसेड़ी पुरुष सो गया है। स्त्री के साथ कोई और मजे लेकर उड़ जाता है। इसी बात को स्त्री कितनी साफगोई और रूमानियत से कहती है – लाजवाब है। हालांकि पुरुष की दृष्टि में वह महज भोग की वस्तु है। यहां भी वह इसी रूप में पेश की गई है। गीत देखिये –

नकबेसर कागा ले भागा अरे मोरा सइयां अभागा, ना जागा। उड़ि-उड़ि कागा मोर बिंदिया पे बइठा, मोर बिंदिया पे बइठा और मोरे माथे का सब रस ले भागा। नकबेसर कागा...... उड़ि-उड़ि कागा मोर नथुनी पे बइठा, और नथुनी पे बइठा मोरे होठवा का सब रस ले भागा। नकबेसर कागा...... उड़ि-उड़ि कागा मोर चोलिया पे बइठा, और चोलिया पे बइठा और जोबना का सब रस ले भागा। नकबेसर कागा...... उडि-उड़ि कागा मोर करधन पे बइठा, और करधन पे बइठा और मोर कमरियों का सब रस ले भागा। नकबेसर कागा.....⁵ इस दूसरे होली गीत में परकीया-प्रेम की व्यंजना है।

नायिका के कुराह चलने के कारण उसके पैर में केतकी के कांटे चुभ गये। उल्लेखनीय है कि केतकी में सौरभ के साथ कांटे भी होते हैं। परकीया-प्रेम सुखद भी है और उलझनपूर्ण भी। इस प्रेम में एक उद्दाम वेग है तो वहीं बड़े खतरे व अपमान का भयंकर डर भी होता है। इसमें साहस, अतीव तृप्ति, मौत को चुनौती देने की ताकत, सारे रस्मों-रिवाज व बंधनों को तोड़ने की गजब की हिम्मत और अपमान का भयंकर डर भी होता है – बावजूद यह इतना आकर्षक है कि दुनिया का हर इंसान इसमें प्रवेश कर ही जाता है। यह गीत द्विअर्थी है। नायिका भी इस प्रेम में पड़कर उलझन में पड़ गई है। अब उसे अपनों से ही बचाव की आशा है –

चले के तो रहिया, चलली कुरहिया, से गड़ी गेलइ ना। केओरवा के कंटवा से गड़ि गेलइ ना। देवरा मोरा कांटा निकालतइ ननदिया से पिया मोरा ना से हरतइ दरदिया, से पिया मोरा ना

इस तीसरे गीत में होली के अवसर पर नायिका पर अनुराग की वर्षा हो रही है। फागुन के आते ही उसे कई तरह से गिफ्ट और प्यार दोनों मिलेंगे। उसके लिए यह महीना सुदिन बनकर आया है। गीत देखिये –

> फागुन महिनवां, आयल सुदिनवां देवरवा भिंगावइ चुनरिया। पटना सहरवा से आवइ रंगरेजवा रंगवा डुबावइ जोबनवां। टिकवा गढ़ावे सइयां, झुमका गढ़ावे देवरा गढ़ावइ बेसरिया। कंगनवां गढ़ावे पिया, पहुंची गढ़ावे देवरवा गढ़ावइ करधनियां। रंग नहीं डार देवरा, अबीर नहीं डार

भींजि गेलइ गदराएल जवनियां

चइती/चैती – चइती गीत चइत के महीने में गायी जाती है। इस महीने में धरती फूलों की खुशबू से तर रहती है वहीं फसलों से किसानों का ह्रदय गदगद हो रहा होता है। इस महीने में आम में मंजरियां आ जाती हैं, जिसकी मादक गंध से हर जीव मादकता का अहसास करता है। वातावरण भी सुखद होता है, जिसमें न तो सर्दी होती है, न गर्मी और न बरसात। कुल मिलाकर, यह महीना मौज-मस्ती का भरपूर साधन लेकर आता है। प्रकृति प्यार के लिए उद्दीपन बनकर आती है। युवा स्त्रियां प्यार पाने को लालायित हो जाती हैं। इस महीने में प्रकृति ही नहीं, जीव-जंतु और हर मनुष्य रस के भार से भर जाता है तथा उन्मत्त महसूस करता है। विरहिणी नायिका के ह्रदय में प्यार की कसक और टीस उठती है, वहीं संयोग सुख में जीने वाली नायिका बल्लियों उछलती है। चैती गीत रोमांचक होते हैं।

इस चइती गीत में नायिका बगीचे में गई थी। उसकी अंगुली में कांटा चूभ गया है। अब वह परेशान है कि कौन उसकी अंगुली में चुभे कांटे को निकालेगा और कौन उसके इस दर्द को दूर करेगा। खुद ही उत्तर देती हुई कहती है कि उसका देवर अंगुली के कांटे को निकालेगा और पति उसके टीस-दर्द को दूर करेगा। दरअसल, इस गीत में द्विअथी बातें की गई हैं। लोक की बड़ी खासियत होती है कि वह गूढ़-से-गूढ और जटिल बातों को बडी सरलता से रहस्य और द्विअर्थी शब्दावलियों में समझा देता है। इसी बात को सीधे नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सीधी बातों से सभी समझ लेंगे। इसीलिए प्यार चाहने वाला या वाली अपनी बात को द्विअर्थों या रहस्य में लपेटकर प्रस्तुत करता है। इसे समझने वाला समझ भी ले और शालीनता भी बनी रहे। लोक के गीत रचने या गढ़ने वालों को किसी शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। वे इतने प्रकृति-प्रदत्त प्रतिभा के धनी होते हैं कि उनके सामने बड़े-से-बड़े डिग्रीधारी भी पस्त हो जाते हैं -

> कंटवा गड़ेला जिओ साले हो रामा ना जइबो बिगया। के हो निकाले मोरा अंगुरी के कंटवा के हर लीहें मोर दरिया हो रामा ना जइबो बिगया। देवरा निकाले मोरा अंगुरी से कंटवा सइयां हर लीहें मोर दरिया हो रामा ना जइबो बिगया। सेवरा निकाले मोरा अंगुरी से कंटवा सइयां हर लीहें मोर दरिया हो रामा ना जइबो बिगयां

इस दूसरे चइती गीत में नायिका अपने गोरे रंग पर गोदना नहीं गोदवाती। उसे डर है कि कहीं गोदना के काले रंग को देखकर उसका प्रेमी उसे पहचानने से इंकार न कर दे। गालों की गोराई उसके प्रेम की पहचान है। वह कल ही आनेवाला है। इस मदमस्त मौसम में उसका अंग-अंग फड़क रहा है और दूसरी खुशहाल सहेलियों को देखकर मन हाहाकार कर रहा है। ऐसे में, उसकी आस पूरी नहीं हो सकेगी। वह लाख कसम खायेगी और समझाएगी कि उसके गाल का काला धब्बा गोदने का है – कुछ और दाग नहीं है, तब भी वह प्रतीत नहीं करेगा। मुन्नी चौधरी लिखित इस गीत को देखिये -

गोर-गोर गालों पे गोदनवां हो मामा हम ना गोदइबे। काल्हे हई राजा के अवनिआं से एही हवे पीआ के निसनियां हो मामा हम ना गोदइबे। अंग-अंग फरके हीआ मोर हहरे से कइसे खेलब हम चिकनिआं हो मामा हम ना गोदइबे। गोदना के रंग भूच-भूच करिआ से ना पतिअइहें खाई कतनो कसमिआं हो मामा हम ना गोदइबे।

बइसाखी/बैसाखी – बइसाखी बैसाख के महीने में गाया जानेवाला गीत है। इस वक्त तेज गरम हवा चल रही होती है। मगही इलाके में ताड की ताडी पेय के रूप में पी जाती है। वहां ताड के पेडों की अधिकता होने की वजह से ताडी एक बहुत ही प्रसिद्ध पेय है। यह एक ऐसा पेय है, जिसका कोई नुकसान नहीं है, बल्कि फायदे-ही-फायदे हैं। किसान गरमी के इन (अप्रैल-मई) महीनों में सारे काम-धाम निपटाकर खाली पडा होता है। शादी-ब्याह अपने चरम पर होता है। चिलचिलाती धूप और गरमी में शादी-ब्याह जैसे जरूरी काम निपटाये जाते हैं। ऐसे में, ताड़ या आम के बगीचे में या रोड के किनारे बनी टेम्पोरेरी खघडे से बनी झोंपडी में ताडी मिलती है। पैदल चल रहा गरीब-गुरबा इस पेय को पीकर मदमस्त हो जाता है और सारा काम निपटा लेता है। गरीब तो गरीब अमीर स्त्री-पुरुष भी इसे खुब पीते हैं। इसका लगातार सेवन करनेवाला आदमी अनेक भयंकर बीमारियों से मुक्त रहता है। यह गरीब-गुरबों का गीत है, जिसे ताडी पीकर गाया जाता है या अगर न भी पी जाती है तब भी इसे खरिहान या दोपहरी में आम के बगीचे में मेहनत-मजूरी करने वाले लोग इकट्ठा हो जाते हैं और गाते रहते हैं। इस गीत में इतनी मिठास और उल्लास होता है कि तपती धरती, आग बरसाती पछुआ हवा और जानलेवा लू भी गरीब-गुरबों को कुछ बिगाड़ नहीं पाती। इस प्राकृतिक आपदा के दौर में लोगों को स्वस्थ रखता है ताड़ की ताड़ी, सत्तू, फूला चना, प्याज और कुएं या हैंड पम्प का ताजा-शीतल पानी। इतना ही नहीं, इस वक्त ककडी, फूट, तरबूज, जेठुआ सब्जियां, आम के टिकोरे व उससे बना कूचा सारे दुख-ददीं से इंसान को मुक्ति दिलाने में कारगर साबित होते हैं। बइसाखी गाने वाले मजदूर, बनिहार, बाजे-गाजेवाले, नट-गुलगुलिया या बंजारे, अहीर लोग इसे खूब गाते हैं। इसी महीनें में पासी के ताड़ी की मुंहजूठी होती है। मुंहजूठी के दिन पासी पहली बार अपनी ताडी का स्वाद चखता है और मौत को मात देती कठिन परिश्रम से ताडी उतारता रहता है। पूरे बइसाख के महीने में वह खाली बदन रहता है। यही ताड़ी उसे

Vol-1, Issue-2 58

सभी प्रकार के रोग-दुखों से मुक्त रखता है। हालांकि अब ताडी पर टैक्स न लगने के कारण कुछ आमदनी भी हो जाती है। लेकिन यह मौत का झुला साबित होता है। हर साल सैकडों पासी ताडी उतारते वक्त गिरकर मर जाते हैं। यह इतना दुश्कर धंधा है कि हमेशा जान जोखिम में पडी होती है। बइसाखी के गीतों में गरीब-दीन-दुखियों की आहें व दर्द भुलाने के भाव होते हैं। वह अपने दुखों को भुलाने के लिए ताडी, ढोल-सिंघा-तरसा पर नाचते चमारों के नाच, नंगे बदन दंउरी व दूसरे सारे काम करता मजदूर बइसाखी गाता वक्त काट लेता है। गांव में नेटुआ का नाच भी इन्हीं महीनों में दिखता है। बइसाखी तडबन में गाया जानेवाला गीत है। दरअसल, बइसाखी ताडी और गीत का पूरक है. ताडी श्रमिक व निम्न-मध्य वर्ग के लोगों का प्राण है। यही वर्ग तड़बन में ताडी पीने पहुंचता है और फिर ताडी पीकर गीत गाते हैं, जिसे बइसाखी गीत कहते हैं। ताडी पीने वाले-गाने वाले तो पुरुष होते हैं पर उनके दिलों की तृप्ति तो स्त्री ही करती है। इसलिए गीत के केंद्रीय भाव में स्त्री होती है। तड़पीवे ताड़ी पीकर अपनी प्रिये को याद करते हैं, उन्हीं के आगोश में समा जाते हैं तथा उनके ही विरह में तडपते हैं। यही ताडी उन्हें सारे गमों से मुक्ति की राह दिखाती है। वे जहां भी होते हैं ताडी पीकर मस्ती में गाते हैं और सुकून की नींद सोते हैं चाहे भूखे पेट क्यों न हों। यहां बइसाखी का एक गीत देखिये -

हउआ बहे रसे-रसे घुमई नजरिआ, जिआ कहे चलअ-चलअ पिआ के नगरिआ। जिह्या से सइआं मोरा गेलन बिदेसवा, आवे न अपने न भेजे कोई सनेसवा। लिलचा के रह जाहे ललकल नजरिआ। जिआ कहे चलअ-चलअ पिआ के नगरिआ। जाड़ा जड़ाई गेलई सउँसे ई देहिआ, गरमी में सब जरई सबरे सनेहिआ। जिअरा डेराए रामा छाए घअटा करिआ जिआ कहे चलअ-चलअ पिआ के नगरिआ

कजरी – इसे बरसाती, कजली और मल्हार भी कहते हैं। यह गीत सावन-भादो के महीने में गाया जाता है विशेषकर बिहार और उत्तर प्रदेश में। तीन महीने की भीषण गरमी के बाद सावन की फ़हार पड़ते ही धरती मादक सोंधी गंध से भर जाती है। धरती पर चारों तरफ यह मादक गंध फैल जाती है और पुरा जड-चेतन एक नयी उमंग और जोश से भरा दिखता है। मानव शरीर गदराया हुआ महसूस करता है। तपती देह पर पानी की शीतल फुहार मानों इत्र छिड़क देता है, तेज झोंका देह को नहला कर धो देता है और जवानी निखर उठती है। दिल प्यार करने को मचल उठता है। धरती पर चारों तरफ हरियाली-ही-हरियाली दिखाई पडती है। तपी धरती के गर्भ से नये बिरवों के अंक्र फूट पड़ते हैं और अपनी सजीवता व मस्ती प्रकट करते हैं। उमड-घुमडकर काले बादलों का आना और फिर गरज-गरज कर फुहार के साथ मूसलाधार बारिश जड़-चेतन को तृप्त कर देती है। इन्हीं काले बादलों के बीच कजरी गाई जाती है, क्योंकि धूप नहीं होती और मौसम

खुशगवार होता है। इसी बीच बारिश की हल्की फुहार तेज झोकों के साथ आती रहती है। लोग भीगते रहते हैं और कजरी गाते रहते हैं। महिलाएं अमराइयों में झूला लगाकर झूलती रहती हैं। कजरी गीतों में समाज की अच्छाई-बुराई, स्त्री की इच्छा-आकांक्षा, गोपन रहस्य आदि बयां होता है। मिर्जापुर, काशी व बिहार के दाउदनगर (औरंगाबाद) की कजरी सर्वाधिक प्रसिद्ध है, एक कजरी गीत देखिये – कइसे खेले जाइब सावन में कजरिया

बदिरया घीरी आइल ननदी। घर से निकसी अकेली, संग में एको ना सहेली गुंडा रोकि लेले बीचिहें डगरिया। बदिरया केतना जना फांसी जइहें केतना गोली खाके मुइहें केतना पीसत होइहें जेहल में चकरिया। बदिरया 10

नई-नवेली भौजाई की इच्छा है कि वह कजरी गाने जाना चाहती है, तभी काले बादल व बादल रूपी गुंडे आ धमकते हैं। वह यह बात अपनी ननद को बताती है। घर से अकेली निकलती है और गुंडे उसे रोक लेते हैं। इस छेडने के अपराध में कितने तो मारे गये और कितने तो जेल की चक्की पीस रहे हैं। यह भारत के सामंती व पुरुष प्रधान समाज की कड़वी सच्चाई है, जहां अकेली स्त्री कभी सुरक्षित नहीं रही है। वह आज भी इसकी शिकार है। यह बात भी वह स्त्री अपनी ननद को बताती है, क्योंकि वही उसे समझ सकती है कोई और नहीं। एक और गीत में ननद-भौजाई के बीच सम्वाद है. ननद आग्रह करती है कि वह कदम्ब के पेड पर लगे झूले पर झूलने चले। भौजाई प्रोषितपतिका है। उसका पति बिदेस में है, इसलिए उसका मन झूला झूलने को नहीं करता। उसे सब कुछ व सारी चीजें दुखदायी ही दिखाई देती हैं, क्योंकि दुख में सुखकर चीजें चौगुनी दुख देती हैं। यहां दोनों के सम्वादों वाली कजरी गीत देखिये –

> हिंडोलवा लागल हइ कदमवां, भउजो चलहू झूले ना। पिअवा सावन में बिदेसवा ननदो, हिंडोलवा भावे ना। आवइ पानी के झिंकोरा, भउजो जिअरा हुलसइ ना। मनवां कुहुंके हे ननदिया, सइयां पतिया भेजे ना। लागल सावन के फुहरवा भउजो, पपिहा बोलइ ना। बुंदवा लागइ मोर बदनवां, जिआ मोरा झुलुसइ ना¹¹

बरसाती – इसे बारहमासा (बारह महीने की कथा), छौमासा (छौ महीने की कथा), चौमासा (चार महीने की कथा) भी कहते हैं। यह बरसा-ऋतु में गाया जानेवाला गीत है. इसमें बारहों महीने के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, गरीबी, अभाव व घर में रह रही अकेली विरही स्त्री की स्थिति का वर्णन किया जाता है। पित परदेस चला गया है, लेकिन महीने-दो-महीने बाद आने का वादा करके वह वर्षों तक नहीं लौटता और इस बीच घर में बैठी अकेली स्त्री का जीवन बद से बदतर होता चला जाता है। बारहमासा एक तरह से गरीबी, विरह और दर्द का गीत है। यह विप्रलम्भ श्रृंगार का एक अन्यतम उदाहरण भी है। यह लगभग हर राज्य में पाया जाता है। समाज पुरुष प्रधान होने के कारण स्त्रियों का दर्द पुरुषों द्वारा व्यक्त किया जाता है।

Vol-1, Issue-2 59

स्तियों को पुरुषों की तरह बाहर निकलकर बाजे-गाजे के साथ गीत गाने की इजाजत नहीं दी जाती। दूसरे, उन्हें घर-परिवार के कामों से वक्त ही नहीं मिलता कि वे पुरुषों की तरह गीत गाकर अपना मनोरंजन करें। इसीलिए भाव स्त्री-केंद्रित होते हुए भी गीत पुरुषों द्वारा गाये जाते हैं। हां, कुछेक मौकों पर गाये जाने वाले गीत केवल स्त्रियों द्वारा ही गाये जाते हैं, जिसे पुरुषों ने केवल उन्हीं के लिए छोड़ दिया है। लेकिन यहां भी अपवाद है। मगध व मगही इलाके में गीत गाने वाले लौंडे भी होते हैं, जो पुरुषों व स्त्रियों के गीत गाते हैं। अपवादस्वरूप, विशुद्ध स्त्रियों के गीत गानेवाले भी कुछ पुरुष पाये गये हैं। तेलडीहा गांव का एक भाट (तेवारी) स्त्रियों के गीत गाते-गाते खुद भी व्यवहार में स्त्री ही बन गया था। इसे बरसाती इसलिए कहा गया है कि किसान-मजदूरों को धान रोप लेने के बाद काफी वक्त मिल जाता है, जहां रात में पुरुष इकट्ठा होतें हैं और पूरी रात बरसाती गाते-गाते सुबह हो जाती है। इस गान का आनन्द लगभग महीने भर लिया जाता है। इस मगही बरसाती गीत की शुरुआत असाढ़ महीने से की गई है। बादल जलधार साजकर चल पडे हैं। ऐसे समय में, सीता को पाने के लिए राम ने समुद्र में भी बांध बांधा था, पर इस नायिका का प्रियतम नहीं आया। सावन की रिमझिम भी व्यर्थ चली गई। भादो की भयावनी रात में भी प्रिय को प्रियतमा का ध्यान नहीं आता। आसिन में स्वकीया प्रिय को परकीया में अनुरक्त रहने का मधुर उपालम्भ देती हुई याद करती है। इसी तरह कातिक का पुन्य मास चला जाता है। अगहन की हरियाली और प्रकृति के जीव-जंतुओं से विलास का दृश्य समाप्त हो जाता है। पूस का कंपानेवाला ठंढ निरर्थक बीत जाता है। माघ का बसन्ती बयार शरीर को चुभोकर लौट जाती है। फागुन का रंग-गुलाल विरहिणी के चित्त को उदास कर चला जाता है। चैत के फूलों की बहार समाप्त हो जाती है, लेकिन इतने पर भी उसका प्रिय नहीं लौटता। बैसाख की झुलसानेवाली लहर में विरहिणी की ज्वाला बढ़ जाती है। इस पर भी प्रिय को घर लौटने का ध्यान नहीं आता। अंत में, जेठ मास आता है। विरहिणी का भाग्योदय होता है। उसका प्रियतम लौट आता है। कुल मिलाकर, सम्पूर्ण गीत में हरेक मास के प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन के साथ विरहिणी की वियोगजन्य वेदना का भी चित्रण हुआ है -पहिल मास असाढ़ हे सखि साजी चलल जलधार हे एही पिरीत कारन सेतु बंधौलन, सीअ उदेस सिरी राम हे सावन हे सखि, सबद सोहावन रिमझिम बरसइ बूंद हे सबके बलमुआं रामा घर-घर होइहें, हमरो बलमूं परदेस हे भादो हे सिख रइनी भयावन, दूजे अंधेरिआ के रात हे

ठनका जे ठनकइ रामा, बिजुरी जे चमकइ, सेइ देखि जिअरा डेराए हे

आस जे पूरइ रामा कुबरी सौतिनिआं के, जे कंत रखलक लोभाए हे

आसिन हे सखि आस लगौली, आस न पूरल हमार हे

चकवा-चक

कातिक हे सखि, आयो देवारी सब सखि दिअना जराए हे सखिआ सलेहर रामा पेन्हि पटम्बर चलि भेले गंगा असनान हे अगृहन हे राजि अगते मनीज जनंत्रिति मीअत बाज ने

2.

पूस मास सखि जाड़ा पड़तु हैं थरथर कांपअ हेअ करेज हे माघ हे सखि पाला पड़ेला सब सखि रुइआ भराए हे हमहूं अकेली धानी सून सेजरिआ पिआ बिनु जड़वो न जाए हे फागुन हे सखि मस्त महीना सब सखि खेलई अबीर हे ओहि देख-देख जिअरा जे तरसई कापर डारूं रंग हे चइत हे सखि सब बन फूलई फूलले बेलि-गुलाब हे सखि सब फूलई रामा पिआ के संग में हमरो फुलवा मलीन हे बइसाख हे सिख पिआ निहें आएल बिरहे कुहकइ मोर जीउ हे दिन जे बीतइ रामा रोवत-रोवत कुहकत बीते सारि रात हे जेठ हे सिख आएल बलमुआं, पूरल मनवां के आस हे संउसे दिन रामा मंगल गैली, रात बितौली पिआ संग हे12

निष्कर्ष:

लोक स्वतंत्र, स्त्री-केंद्रित, सबल, वास्तविक और सर्वाधिक पुराना या नेटिव है. यही लोक गाँव है, गंवई है और बेईमानों की नजर में गंवार है. यह मेहनतकश अवाम की दुनिया है. यहां हरामखोरी नहीं चलती। हालांकि आज वहां भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है। बावजूद इसके, धरती-पुतों को शरण वहीं मिलता है। कोविड-19 महामारी इसका सबल प्रमाण है। आदिम जनतंत्र के सुराग वहीं मिलते हैं। वहां पोथियां और ग्रंथ नहीं चलते। वहां मानव की इच्छा, आकांक्षा, जिज्जीविषा, उद्दाम साहस, प्रेम, बर्बरता और बेबसी चलती है। एक ऐसा सातत्य, जिसे दुनिया की कोई भी हस्ती मिटा न सकी। तंत्र, सूत्र और दर्शन मिट गये, पर लोक अपनी निरंतरता में आज भी जीवित है और खरा है। लोक बनावटी नहीं है, बल्कि प्राकृतिक है। लोक किसी बेद को नहीं मानता – यही उसकी हस्ती का प्रमाण है। वह अनगढ़ है। कुल मिलाकर, जीवन लोक में ही है। इसीलिए वरेण्य है।

संदर्भ :

- अर्याणी, सम्पत्ति: मगही भाषा और साहित्य (1976), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ.सं. 151
- https://hi.wikipedia.org/wiki/
- उपाध्याय, भगवतशरण: पाठ 'लोकगीत', 'वसंत भाग 1' (2006), एनसीईआरटी पाठ्यक्रम प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं ९७
- अर्याणी, सम्पत्तिः मगही भाषा और साहित्य (1976), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ.सं. 152
- वहीं, पृ.सं. 243
- वही, पृ.सं. 241-42
- 7. वहीं, पृ.सं. 242
- यादव, रामकिशोर: जनपदीय साहित्य (2018), के. एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ.सं. 25-26
- http://kavitakosh.org/kk
- 10. यादव, रामकिशोर: जनपदीय साहित्य (2018), के. एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ.सं. 26
- 11. अर्याणी, सम्पत्तिः मगही भाषा और साहित्य (1976), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ.सं. 253
- 12. सिंह, राम प्रसाद: मगही लोक गीत के वृहद संग्रह (1999), मगही अकादमी, पटना, पु.सं. 379-80

डिजिटल अर्थव्यवस्था (भारत के विशेष संदर्भ में)